National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

**ISSN: 2454-9177**
**NJHSR 2026;** 1(64): 01-05
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

**Sanjay Kumar**
Research Scholar,
Department of Hindi,
Sri Guru Ram Rai University,
Dehradun

**Correspondence:**
**Sanjay Kumar**
Research Scholar,
Department of Hindi,
Sri Guru Ram Rai University,
Dehradun

# गढ़वाल का साहित्य एवं इतिहास

**Sanjay Kumar**

**प्रस्तावना:** भारतवर्ष का गढ़वाल क्षेत्र युगों युगों से अनेक तीर्थयात्रियों, पर्वतारोहियों एवं पर्यटन के शौकीन लोगों का सबसे पसंदीदा स्थल रहा है। सभी धार्मिक ग्रन्थों व पुराणों में इस क्षेत्र का विस्तृत वर्णन किया गया हैै। इस क्षेत्र को तपोभूमि कहा गया है। क्योंकि यह क्षेत्र आध्यात्मिक एवं अपने सुनहरे वातावरण का प्रमुख केन्द्र है। समय के साथ इस क्षेत्र में भी कई परिवर्तनीय घटनाक्रम हुए और नवीन परिस्थितियां बनती रही यह तो समय के चक्र में है,परन्तु किस प्रकार से इंसान के सामाजिक जीवन में वदलाव का क्रम रहा होगा इसका क्रमबद्ध इतिहास तो विद्वतजनों को प्राप्त नहीं हुआ।परन्तु कुछ पुरातन जाग्रत मनीषियों से गढ़वाल से सम्बन्धित जानकारी अवश्य प्राप्त हुई होगी। इसका प्रमाण यहां के जागर, पंवाड़े, लोकगीत, लोककथाऐं, लोकगाथाऐं, में प्रस्तुत है। गढ़वाल की क्षेत्र जितना शान्त, लोकप्रिय एवं आध्यात्मप्रिय है यहां का इतिहास उतना ही विकट, संघर्षपूर्ण, एवं अनेकों उतार-चढ़ावों से घिरा रहा है।

देवतुल्य हिमालय की गोद में रचा-बसा यह सम्पूर्ण गढ़वाल क्षेत्र ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिकत महत्व के लिए विख्यात है। जानकारी के मुताबिक लगभग 11 लाख वर्गमील का यह क्षेत्र गढ़वाल की भूमि है। इसमें चमोली, पौड़ी, टिहरी, रूद्रप्रयाग, उत्तरकाशी, देहरादून, हरिद्वार सम्मिलित हैं। जनसंख्या भी लगभग सभी जनपदों की मिलाकर देखें तो लगभग डेढ़ करोड़ के आसपास होगी। पुराणों में गढ़वाल क्षेत्र को केदारखंड एवं कुमाउं को मानसखंड से उद्धृत किया गया है। हिमालय की उच्च मध्य तथा शिवालिक श्रृखंला में लगभग 32684 वर्ग किमी. के क्षेत्र में गढ़वाल का सौन्दर्यमय क्षेत्र विस्तारित है। विषम भौगोलिक संरचना के कारण यह क्षेत्र पर्यटन के लिए भी अत्यन्त उपयुक्त है। आस्था के प्रमुख स्थल चार धाम तथा अनेक पर्यटक स्थल यहां स्थित हैं। इसके साथ ही पंचकेदार, पंचबदरी, पंचप्रयाग, यहीं पर स्थित हैं जो कि सम्पूर्ण हिन्दुओं की आस्था के केन्द्र हैं। इस क्षेत्र के आकर्षण व महता में अनेक पुरातात्विक गुफाऐं, आश्रम, व पर्यटन से जुडे स्थल अपना अमूल्य योगदान देते रहे हैं। उत्तराखण्ड प्राचीनकाल में यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, किरात, शक, नाग, हूण दस्यु, दानव, पुल्लिंद, तंगण, कोल, भील, खश, आदि निवास करती रही हैं। इनमें से कुछ के वंशज आज भी उत्तराखण्ड के अनेक स्थानों पर निवास करते हैं। यहां की भाषा, रहन-सहन, और संस्कृति पर इन पुरातन जातियों का प्रभाव आज भी दिखाई देता है।

**गढ़वाल शब्द का नामकरण:** किसी भी स्थान विशेष का कुछ न कुछ नाम अवश्य होता है। तथा उसके पीछे उसका कुछ न कुछ अर्थ व प्रयोजन भी छिपा होता है। ऐसे ही गढ़वाल शब्द के विषय में भी कहा जा सकता है। इस नामकरण के पीछे अनेक विद्वानों ने अपनी शोध दृष्टि से कई तर्क व परिभाषाऐं दी हैं। इनमें सबसे तार्किक व वैज्ञानिक परिभाषा साहित्यकार डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' द्वारा प्रस्तुत है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य' में उल्लेख किया है कि-"पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद जब पंवार वंशज महाराजा अजयपाल ने यहां के सब ठाकुरी राजाओं और सरहदों को जीतकर एक सुविस्तीर्ण राज्य स्थापित किया। तब अधिक गढ़ों '52' गढ़ होने के कारण लगभग सन् 1550.1515 ई. के बीच इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा। गढ़वाल के अन्य नाम 'पांचाल देश, देवभूमि, तपोभूमि, बदरीकाश्रम, आदि कई

नाम मिलते हैं''।[1] यह परिभाषा गढ़वाल के सम्बन्ध में सटीक व तर्कसंगत है। व्यञ्जकत्वं न केवलं शब्दस्य किंतु तदर्थस्यापि, तत्रापि नैकतरस्य किंतु वाच्यलक्ष्यव्यङ्गथरूपस्य सर्वस्यापीत्यभिधादि-वैधर्म्यसिद्धये प्रतिपादयति सर्वेषामिति। सर्वेषां वाच्यलक्ष्यव्यङ्गया-नामर्थानामपि व्यञ्जकत्वमिष्यते इत्यर्थः।

**गढ़वाल की भौगोलिक पृष्ठभूमि:** नगाधिराज हिमालय सम्पूर्ण भारत का मुकुट है। जो कि गढ़वाल क्षेत्र में ही विराजित है। इसके साथ ही अनेक उंची पर्वत चोटियां व गहरी-गहरी घाटियां हरे-भरे बुग्याल, दूर-दूर तक फैले घने जंगल जिनमें चीड़, देवदार, बांज आदि गढ़वाल में प्रमुखता से पाये जाते हैं। यहां की पहचान बनी सीढ़ीनुमा खेत व कल-कल करती नदियां विषम भौगोलिक परिस्थितियों के बाबजूद यहां के अद्वितीय प्राकृतिक सौन्दर्य को बनाये हुए हैं। पं0हरिकृष्ण रतूड़ी अपनी पुस्तक 'गढ़वाल का इतिहास' में उल्लेख करते हैं कि ''केदारखण्ड की सीमांकन और महिमा को शिवजी यों वर्णन करते हैं पूर्व में बौद्धांचल ''हिमालय की किसी चोटी का नाम होगा'', पश्चिम में तमसा नदी ''टौंस नदी'', दक्षिण में गंगाद्वार ''हरिद्वार'', उत्तर में श्वैतान्त पर्वत ''हिमालय की श्रेणी से अभिप्राय होगा'', और इसकी लम्बाई 50 योजन ''200'' कोस, चौड़ाई 30 योजन ''120 कोस'' है। यह केदारखण्ड परम पावन भू-बैकुण्ठ भारत की भूमि से पृथक हैं''।[2] इस केदारखण्ड के अन्तर्गत अनेक धार्मिक स्थल व तीर्थ स्थापित हैं। परन्तु इनमें चार तीर्थ केदारनाथ, बदरीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री मुख्य तीर्थ माने गये हैं। देश विदेश से अनेकों श्रद्धालुगण यहां यात्रा हेतु आते हैं। गढ़वाल की भौगोलिक विषमता यहां की उच्च पर्वतशिखरों तथा गहरी-गहरी निर्जन घाटियों में तथा सीढ़ानुमा खेतों हरे-भरे बुग्यालों में स्थित है। यहां की सुन्दरता में हरे-भरे वन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा वातावरण को नई शक्ति प्रदान करते हैं। गढ़वाल के साहित्यिक इतिहास में यहां के उंचे-उंचे पर्वत शिखरों का उल्लेख मिलता है। गढ़वाल और उत्तराखण्ड में कितनी ही उंची व विशाल पर्वत चोटियां हैं जहां समय-समय पर अनेक पर्वतारोही आते जाते हैं। कई लोग वहां जाने के लिए आतुर रहते हैं। क्योंकि यहां की विविध भौगोलिक स्थिति तथा सौन्दर्य बरबस आकर्षित करता है। इसी प्रकार से अनेक नदियां व घाटियां यहां की मजबूत पहचान हैं।

हिमालय की उच्च, मध्य तथा शिवालिक श्रृखंला में लगभग 32684 वर्ग किमी. के क्षेत्र में गढ़वाल का सौन्दर्यमय क्षेत्र विस्तारित है। विषम भौगोलिक संरचना के कारण यह क्षेत्र पर्यटन के लिए भी अत्यन्त उपयुक्त है। यहां आस्था के प्रमुख स्थल श्री केदारनाथ धाम, श्री बद्रीनाथ, गंगोत्री व यमुनोत्री स्थित हैं। इसक अतिरिक्त पंचप्रयाग, पंचकेदार, पंचबदरी यहीं पर स्थित हैं। यहां स्थित आश्रम, अनेक पुरातात्विक गुफाऐं व ऐतिहासिक स्थल पर्यटन के दृष्टिगत महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि संस्कृति और पर्यटन का खूबसूरत तालमेल यहीं पर सर्वाधिक है। एक अध्ययन के अनुसार हिमालय के तीन भाग माने गये हैं- 1. पूर्वी हिमालय . इसके अन्तर्गत मणिपुर, सिक्किम, त्रिपुरा, अरूणांचल प्रदेश, नागालैण्ड, मिजोरम, असम हैं।

2. मध्य हिमालय ''उत्तराखण्ड''. इसके अन्तर्गत उत्तराखण्ड क्षेत्र स्थित है। तथा 3. पश्चिमी हिमालय. इसके अन्तर्गत जम्मू-कश्मीर तथा हिमांचल का क्षेत्र अवस्थित है। हिमालय में 100 से भी अधिक पहाड़ों का पता चलता है जो लगभग 7200 मी. की उंचाई तक विस्तारित है। ये सभी पहाड़ बहुत दूर-दूर तक फैले हुए हैं। जिसमें नेपाल, भारत, भूटान, तिब्बत, पाकिस्तान व अफगानिस्तान की सीमाऐं फैली हैं।

**गढ़वाल का इतिहास:** प्राचीन गढ़वाल का इतिहास लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है। यहां का इतिहास मौखिक रूप से ही सुना गया और इसी प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होता रहा। गढ़वाल की लोककथाऐं, लोकगाथाऐं, लोकगीत, जागर, पंवाड़े, रीति-रिवाज व परंपराऐं मौखिक रूप से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित हुए। प्राचीन समय में गढ़वाल में अनेक जातियां विद्यमान थी जिनमें किरात, कोल, खस, यक्ष, किन्नर, नाग, गुर्जर, हूण, कुंमयू, आर्य आदि का उल्लेख मिलता है। इन जातियों का अपना आधार था तथा इनकी अपनी-अपनी परम्पराऐं रीति-रिवाज रहे होंगे। कालान्तर में अन्य जातियों से संघर्ष के उपरान्त अनका अस्तित्व संकट के दौर में आया लेकिन यहां की भाषागत संस्कृति पर वे कुछ न कुछ अपना प्रभाव अवश्य छोड़ गये होंगे जिसका असर देखने को मिलता है। पौराणिक साहित्यिक व सांस्कृतिक साक्ष्यों के अभाव के कारण यहां स्थित मूर्तियों, मंदिरों, शिलालेखों, ताम्रपत्र, स्मारकों, मुद्राओं, कलाकृतियों, पौराणिक त्रिशूलों इत्यादि में ही गढ़वाल के ऐतिहासिक अतीत का पता चलता है। परन्तु यह सभी जानकारियां भी छठी सदी के बाद के ही प्राप्त होते हैं। श्री रमाकान्त बेंजवाल अपनी पुस्तक 'गढ़वाल हिमालय, ''इतिहास संस्कृति भाषा एवं पर्यटन'' में उल्लेख करते हैं कि ''गढ़वाल प्राचीनकाल काल से ही हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में मानव अस्तित्व कब से है, इतिहास नहीं मिलता। जिस क्षेत्र के राजा का अतीत प्रमाणों के अभाव में अंधेरे में छिपा हो वहां की प्रजा का इतिहास कि, वे किस जाति के हैं, कहां से आये, तथा कब से यहां रह रहे हैं, छिटपुट अभिलेखों के अलावा अनुमान से ही लिखा जा सकता है''।[3]

गढ़वाल के इतिहास में यक्ष, किरात, तंगण, इत्यादि जातियों का अस्तित्व स्थापित था। कालान्तर में यह आर्यों के आगमन के उपरान्त

चार भागों में विभाजित हो गया, जिसमें ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण स्थापित हुए। यह पावन भूमि अनेक ऐतिहासिक वदलावों की गवाह रही है। प्रसिद्ध साहित्यकार श्री सुरेन्द्र पुण्डीर अपनी पुस्तक में उल्लेख करते हैं कि ''वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर आर्यों व अनार्यों के संघर्ष का उल्लेख है। एक किवदन्ती के अनुसार जब मध्य एशिया से आर्य यहां पर आये और उन्होंने खश जातियों पर वर्चस्व स्थापित करना चाहा तो खश जातियों ने आत्मसमर्पण नहीं किया और वे संघर्ष के लिए आगे आये। गढ़वाल की उबड़-खाबड़ धरती पर बाहरी आक्रमणकारियों की एक न चली। एक अन्य कथा के अनुसार आर्यों और अनार्यों के बीच हुए युद्ध के दौरान अनार्यों ने अपने कुल देव शिव को बचाने हेतु ''शिमानी महाराज'' का नारा दिया। ''शिमानी महाराज'' अर्थात् 'शिव को मानिये महाराज' जो तुम्हारा असली देव है। इस युद्ध में जब आर्यों की एक न चली तो वे अनार्यों ''खस जातियों'' से समझौते के लिए विवश हुए। समझौते में तय हुआ कि किसी भी शुभ कार्य में सर्वप्रथम अनार्यों के नायक गणेश की पूजा होगी और उन्हें प्रत्येक किसी भी शुभ कार्य में सर्वप्रथम अनार्यों के नायक गणेश की पूजा और उन्हें प्रत्येक शुभकार्य का फलदायक समझा जाता है। युद्ध में पराजित आर्यों ने कालांतर में अपनी स्थिति सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक रूप से मजबूत कर अलग पहचान स्थापित कर ली। आर्यों ने धीरे-धीरे समाज में अपनी मान्यताऐं अनार्यों पर थोपनी शुरू कर दी और धार्मिक मान्यताओं को बदलने का प्रयास किया। इसका परिणाम सामाजिक जीवन में हुए व्यापक वदलाव के रूप में सामने आया। आर्यों के प्रभाव के कारण हिमालय की मूल जातियां अपनी मान्यताओं को छोड़ती चली गयी''।[4]

श्रीमति रेखा उनियाल अपनी पुस्तक में उल्लेख करती हैं कि - ''मध्य हिमालय जिसे वैदिक काल में ''हैमवत'', उत्तर वैदिक काल में 'उत्तर कुरू', उपनिषदों में 'उत्तर पांचाल', रामायण में 'उत्तर कौशल', महाभारत में 'उत्तर कुरू' तथा पाणिनि व कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'कुरूपथ', नाम से सम्बोधित किया गया। पुराणकाल में किरात जाति के इस क्षेत्र में प्रभुत्व के कारण 'किरातमंडल' तथा खश प्रजाति के लोगों की अधिकता के कारण 'खशमंडल' भी कहा गया। 14वीं-15वीं शती में स्कन्धपुराण इस क्षेत्र को केदारखण्ड 'गढ़वाल', मानसखंड 'कुमांउ' नाम से जाना गया। कालांतर में इस क्षेत्र का नाम 'उत्तराखण्ड' अभिहित हुआ''।[5] गढ़वाल क्षेत्र पौराणिक समय से ही अपनी विशिष्ट पहचान के साथ अपनी मजबूत पहचान बनाये हुए है। गढ़वाल के अन्तर्गत कई राजवंशों का शासन रहा है। जिनमें से कई राजवंशों का यहां के राजवंशें में वर्णन भी मिलता है। परन्तु अधिकांश गढ़पतियों, ठाकुरी सरदारों तथा राजाओं का इतिहास प्राप्त नहीं होता। जनश्रुतियों के अनुसार पंवार वंश के अतिरिक्त गढ़वाल क्षेत्र में तब के समय में अनेक राजवंशों ने शासन किया था। जिनमें नागपुर के डूगा राजा, भागीरथी घाटी में भिलंग राजा, जोशीमठ में कत्यूरी तथा उत्तरी गढ़वाल के जुमला राजा प्रसिद्ध थे। परन्तु इनके सम्बन्ध में पुरातात्विक साक्ष्यों का अभाव है।

गढ़वाल में 1803 से 1804 में गोरखों ने गढ़वाल प्रवेश के बाद उनके उत्पात ने जनता को त्राहिमाम कर रही है। विवश हुई जनता को 1815 में गढ़वाल नरेश से सन्धि के बाद अंग्रेजों ने उन्हें खदेड़ा। गोरखा शासन के खात्में के बाद गढ़वाल में अंग्रेजों के शासन की शुरूआत हुई तथा टिहरी नरेश सुदर्शन शाह ने टिहरी में सत्ता संभाली, तब तक तक तो गढ़वाल में अंग्रेजों के प्रति कोई दुभार्वना नहीं थी, लेकिन बाद में यहां भी धीरे-धीरे जनता में रोष व्याप्त हो गया। गोरख्याणी शासन में गोरखों से पीड़ित यहां की जनता अंग्रेजों को अपना कल्याणदाता समझती थी और उनके प्रति कोई दुराग्रह नहीं था। यही कारण है कि स्वतंत्रा के आन्दोलन की अलग गढ़वाल में बीसवीं सदी से ही प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे जनता टिहरी नरेश और अंग्रेजों की आपसी मित्रता का भी घोर विरोध करने लगी और टिहरी में भी विरोध का स्वर उमड़ने लगा।

**पर्यटन व धार्मिक स्थल:** गढ़वाल हिमालय के सौन्दर्य की अप्रतिम प्रशंसा, समस्त धार्मिक ग्रन्थों व अनेक साहित्य की पुस्तकों में समाहित है। इस तपस्थली में अनेक ऋषिमुनियों व देवत्व की कामना से परिपूर्ण महापुरूषों ने विचरण किया तथा अपनी शरणस्थली बनाया। गढ़वाल में यात्रा व पर्यटन का अद्भुत मेल है। गर्मियों में खासकर पर्यटन व यात्रा अपने चरम पर रहती है। उत्तराखण्ड के अनेक धार्मिक व पावन स्थल यहां की पहचान हैं। जो कि विश्वस्तर पर उत्तराखण्ड व देवभूमि का नाम व पहचान को उद्धृत करते हैं।

**लिखित साहित्य का प्रसार:** पुरातन समय में प्रायः गढ़वाल का साहित्य मौखिक रूप से ही सर्वव्याप्त था। और गढ़वाल की लोकगाथाऐं, लोककथाऐं, लोकगीत, जागर, पंवाड़े इत्यादि पीढ़ीदर पीढ़ी ऐसे ही स्थानान्तरित होते रहे। परन्तु जब धीरे-धीरे जागृति का संचार हुआ और गढ़वाल में लेखन का विस्तार हुआ तो यहां का साहित्य भी लिखित रूप से ही सर्वसम्मुख प्रस्तुत हुआ। अनेक महान विद्वानों ने यह महती कार्य किया। यह शुरूआत क्रान्ति के सदृश विस्तारित हुई। चिन्तन मनन व सृजन लेखन द्वारा सम्पन्न होने लगा। डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' अपनी पुस्तक 'गढ़वाली भाषा और उसका विकास' में उल्लेख करते हैं कि ''गढ़वाली भाषा में लिखित साहित्य का शुभारम्भ सन् 1750 के आसपास हुआ। गढ़वाली के आरम्भिक कवियों में हरिकृष्ण दॉर्गादत्ति रूडोला, हर्षपुरी और लीलानन्द कोटनाला के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सन् 1905 में 'गढ़वाली पत्र' के प्रकाशन से लोगों का ध्यान गढ़वाली भाषा की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ''।[5] गढ़वाली भाषा के साथ बिडम्बना यह रही है इसका न तो कोई अच्छा व्याकरण ही लिखा गया न ही

वैज्ञानिक दृष्टि से इस भाषा का भाषा शास्त्रीय अध्ययन ही हुआ और ना ही लोकगीतों और लोककथाओं का समुचित वर्गीकरण ही हो पाया। इससे गढ़वाली भाषा को समुचित प्रसार तथा मजबूत लेखन नहीं मिल पाया। आधुनिक समय में इस क्षेत्र में काफी कार्य किया गया है जो कि अत्यावश्क था।

**लोकसाहित्य:** किसी भी क्षेत्र विशेष की संस्कृति को समझने के लिए जितना उस क्षेत्र में निवासित जन-समुदाय के धार्मिक विश्वास, आस्था व उपासना विधि, रीति-रिवाज, पुरातन इतिहास, धार्मिक परंपराऐं इत्यादि को जानना भी आवश्यक है। क्योंकि लोकसाहित्य से ही शताब्दियों से धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा दार्शनिक परंपराऐं अक्षुण्य बनी हुई हैं। साहित्य की भाषा भी अपने आप में महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि क्षेत्रीय अथवा स्थानीय साहित्य के निर्माण में वहां की स्थानीय बोली-भाषा का योगदान असीमित होता है। गढ़वाल क्षेत्र लोककथा, लोकगाथा, लोककाव्य, लोकगीत, नाट्यविधा इत्यादि में समृद्धशाली है। पौराणिक मौखिक साहित्य व फिर लिखित साहित्य गढ़वाल की महत्वपूर्ण निधि हैं। श्री धीरज सिंह द्वारा उल्लिखित पुस्तक 'उत्तराखण्ड समाज व संस्कृति' में श्री भगवती प्रसाद नौटियाल उल्लेख करते हैं कि ''निष्कषतः यह कहना समीचीन होगा कि लोक द्वारा निर्मित संस्कृति ही लोक की सर्वश्रेष्ठ काव्यकृति होती है। इसीलिए लोकगीतों, पंवाड़ों, देवजागरों, भड़ों की वार्ताओं, मांगलों आदि का काव्यात्मक मूल्यांकन करते हुए यह तथ्य नहीं भुलाया जाना चाहिए कि लोक साहित्य का वास्तविक तत्व लोकसंस्कृति में निहित है। इस प्रकार का साहित्य इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि लोकसाहित्य केवल साहित्य नहीं है वह साहित्य के अतिरिक्त धर्म, इतिहास, समाजशास्त्र, पुराण, आख्यान आदि सभी कुछ है। वह सही अर्थों में लोकसंस्कृति का वाहक तत्व है। साथ ही लोकसाहित्य, लोक के सांस्कृतिक वैविध्य का समग्र रूप है। इसमें जीवन को अपने समूचे रूप में खोजा और परखा गया है। तथा इसमें आंचलिकता की छाप है''।[6] उत्तराखण्ड की संस्कृति में वादन, गायन व नृत्य का भी अमूल्य योगदान है। यहां के साहित्य में भी इसका उल्लेख है। यहां का प्रमुख वाद्य यहां का 'ढोल' है जो उत्तराखण्ड में संस्कृति का शुभंकर माना जाता है। ढोल से प्रस्फुटित स्वर हिमालयी नाद का शिरोमणि कहलाता है। मांगलिक कार्यों में ढोल के साथ मांगलिक गीत गाया जाता है। गढ़वाल का साहित्य मौखिक रूप से लिखित रूप में आने पर काव्य रूप में ही लिखा गया। जिसमें अनेक कविताऐं भक्ति व वीरता के भाव से भरी हुई थी। कुछ कविताओं में गीतों के भाव थे। कालांतर में गद्य लेखन का आरंम्भ हुआ और धीरे-धीरे गढ़वाल का लोकसाहित्य अपने शिखर की ओर गतिमान होता चला गया जिसमें यहां की संस्कृति की झलक, परंपराऐं, अनेक कथाऐं, गाथाऐं, पंवाड़े, लोकगीत, लोकनृत्य, नाटक त्योहार आदि का सम्पूर्ण समायोजन निहित हुआ। श्री मोहनलाल बाबुलकर अपनी पुस्तक 'गढ़वाली लोकसाहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन' में गढ़वाली लोकसाहित्य का वर्णन करते हैं जो कि इस प्रकार है-''लोकगीतों का वर्गीकरण गीतों में सार्वभौमिक रूप से पाई जाने वाली प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया जा सकता है और वही वर्गीकरण पूर्ण और वैज्ञानिक माना जायेगा। गढ़वाली लोकसाहित्य का वर्गीकरण -जनपदीय लोकसाहित्य के रूप में विभिन्न रूपों में उपलब्ध है। उपलब्ध लोकसाहित्य को निम्न नौ बड़े भागों में बांटते हैं। 1.गीत साहित्य 2. गाथा साहित्य 3. कथा साहित्य 4.पखाणा ''कहावतें'' 5. आणा ''पहेलियां'' 6.चुटकुला ''साधारण प्रचलित रूप'' 7. ढोलसागर ''ढोल ताल स्वर सम्बन्धी संगीत विधा है। इसकी शब्दावली संस्कृत क्रिया जनपदीय बोली की है। 8. औसर स्वांग-गद्य-पद्य दोनों में सामग्री मिलती है। 9. भक्ति भाव- लिखित साहित्य। इस साहित्य को अधिकतर पद्य रूप में लिखा गया है ये भक्ति विषयक प्रार्थनाऐं, आरतियां अथवा विभिन्न देवताओं के गीत हैं''।[7]

गढ़वाल के इतिहास में यह तथ्य पूर्णतया समाहित है कि यहां की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अत्यन्त विराट है। जिसकी यहां के निवासियों ने समय-समय पर रक्षा भी की है और इसे पूरा तरह से आत्मसात भी किया है। वेद ओर वेदोत्तर साहित्य साहित्य का यह केदारखण्ड क्षेत्र तपोभूमि, देवभूमि, और महाकवि कालिदास की जन्मभूमि है। इसमें आर्यों व आर्योतर जातियों की अदला-बदली होती रही। हिमश्रृगों की इस शान्त भूमि में जहां अनेक आध्यात्म के अनेकों महर्षियों व ऋषियों ने तप किया वहीं अनेकों अत्याचारों से पीड़ित यहां के निवासियों ने अपने धर्म व 'स्व' की रक्षा के लिए इस क्षेत्र में शरण लेकर कठोर संघर्ष किया। इसीलिए अनादिकाल से यह क्षेत्र भारतीय धर्म, संस्कृति और संस्कृति और सभ्यता का संवाहक रहा है। अनेक धर्म सिद्धान्तों व सभ्यताओं का यहां पर समागम हुआ है। इन्हीं सब धर्म सिद्धान्तों व सभ्यताओं की अभिव्यक्ति यहां की संस्कृति में मिलती है। गढ़वाल का साहित्य यहां के कठिन संघर्या व स्वाभिमान की गाथा भी है और यहां की अभिव्यक्ति की सर्वोत्तम मिशाल भी।

**निष्कर्ष:** गढ़वाल की संस्कृति व साहित्य में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जितना विराट गढ़वाल का इतिहास है उतना ही विस्तृत साहित्य। यहां की प्राकृतिक सुन्दरता और सुरम्य वातावरण सदियों से सबके लिए अनुकूल रहा है। गढ़वाल में अनेक ऐसे प्राकृतिक व मानवीय घटनाक्रम घटित हुए जिन्होंने गढ़वाल की पवित्रधरा को अभिसिंचित किया और अनेक नवीन अनुभव प्रदान किये। इतिहास व संस्कृति का आपसी तालमेल सदा से रहा है लेकिन साहित्य इन सभी को संतुलित रखता रहा है। सम्पूर्ण भारतवासियों का गढ़वाल और उत्तराखण्ड के प्रति अगाध श्रद्धा और पर्यटन के प्रति असीम आकर्षण है। यही गढ़वाल की खूबसूरती रही है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ:**

1. 'शैलेश' डा. हरिदत्त भट्ट: 'गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य', पृ.सं. 13
2. रतूड़ी, पं. हरिकृष्ण: 'गढ़वाल का इतिहास', पृ.सं., 4 व 5
3. 'शैलेश' डा. हरिदत्त भट्ट: 'गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, पृ. सं. 81
4. बेंजवाल, रमाकान्त: गढ़वाल हिमालय ''इतिहास, संस्कृति, भाषा, यात्रा एवं पर्यटन'', पृ.सं. 47
5. पुण्डीर, सुरेन्द्र: 'जौनपुर, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास', पृ. सं. 12
6. उनियाल हेमा: जौनपुर-बाबर, रॅवाई-जौनपुर, ''समाज, संस्कृति, वस्तुशिल्प पर्यटन'' पृ. सं. 6
7. नेगी श्री धीरज: 'उत्तराखण्ड समाज और संस्कृति', पृ.सं. 137
8. बाबुलकर मोहनलालः 'गढ़वाल लोकसाहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन', पृ.सं. 35